आधुनिक हिंदी रंगमंच की विभिन्न शैलियाँ

शैलीबद्ध

स्तानिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत की परंपरा को नाट्य जगत में एक वरदान के रूप में माना जाता रहा है, इस सिद्धांत से प्रभावित होकर अनेक नाट्यकारों व निर्देशकों ने संसारिक जीवन के अनुभवों को हूबहू मंच पर लाकर रंगमंच के इतिहास में क्रांति ला दी। परंतु विश्वयुद्ध की त्रासदी ने मानवीय मूल्यों व मानव के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। इन्हीं प्रश्नों ने एक नए रंगमंच को जन्म दिया, इन विचारों से प्रभावित होकर नाटक लिखे और खेले जाने लगे, इसी विचार ने बॉक्स रंगमंच के बंधे-बंधाये खांचे से रंगमंच को बाहर निकाला और अनेक नई शैलियों और फार्मों का उदय हुआ जिसमें विसंगति के नाटक, प्रयोगवादी रंगमंच, टोटल थियेटर व शैलीबद्ध अभिनय आदि शामिल था।

शैलीबद्धता दो विपरीत तत्त्वों का संयोग है जब दो विपरीत तत्त्व एक ही समय पर एक काम करने लगते हैं तो एक अनचाही स्थिति रचित होने लगती है, तब यह बनी-बनायी धारणा, सोच और आदर्श को तोड़ देती हैं। शैलीबद्ध अभिनय रंगमंच का एक सशक्त माध्यम है, जो रंगमंच की इच्छापूर्ति का माध्यम है, शैलीबद्ध अभिनय अपने साथ सभी प्रकार की शैलियों, फार्मों आदि को आने का निमंत्रण देता है, ताकि रचना प्रक्रिया में किसी प्रकार बाधा न हो, माना कि Stylization शब्द West से आया है लेकिन यह हमारे भारत से ही विदेशों में गया है, संस्कृत नाटकों में यह शैलीबद्ध रूप में प्रयोग होता रहा है, अंग-संचालन, हस्तमुद्राओं, चारि, लयबद्धता व गीत-संगीत आदि से परिपूर्ण अभिनय ही शैलीबद्धता की पहचान है। वर्तमान में निर्देशक आंगिक अभिनय की तकनीकों का सम्मिश्रण और नाट्यधर्मी के नृत्य, गीत, संगीत से परिपूर्ण अभिनय की निर्मित है। विदेशों में Stylization का प्रयोग हमारे

Scanned by CamScanner

भारत से प्रभावित है, यूनानी नाटक, शेक्सपियर के नाटक, मोलियर के नाटक, बैन जान्सन के नाटक, मार्लो के नाटक कहने का तात्पर्य यह है कि यथार्थवादी दौर से पहले किसी भी देश और भाषा के नाटक पूरी तरह से शब्द बहुल नाटक रहे हैं और वे पूरी तरह से नाट्यधर्मी रंग परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपनी मंचीय अभिव्यक्ति में अधिक से अधिक शैलीबद्ध रंग तत्वों यथा गीत, संगीत, मुद्राओं एवं गतियों का प्रयोग करते हैं।

नाट्यशास्त्र को भारतीय प्रदर्शनकारी कलाओं का बीज कहा जा सकता है जिसकी जड़ों से सारी कलाओं का जन्म हुआ, चाहे भरत मुनि हो या अरस्तु सभी कला गुरूओं ने कला को बहुत करीब से जाना, मनुष्य के बारे में, सौंदर्य के मापदण्ड क्या हैं? आदि पर गहन अध्ययन किया, उन्होंने यह नहीं कहा कि यही करना चाहिए। उन्होंने प्रदर्शन की तकनीकों को परिष्कृत करने, अंगों में परिष्कार लाने, मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए क्या-क्या ढंग हो सकते हैं? रस को कितने तरीके से व्यक्त कर सकते हैं? आदि से परिचित कराया, इसके बाद स्तानिपस्लावस्की, ब्रेख्त और ग्रोतोवस्की ने नाट्यशास्त्र को पढ़ा, उसे सराहा और ग्रहण भी किया। रंगमंच में अभिनय की जड़ें किसी स्थान विशेष से नहीं हैं, इसकी जड़ें बहुत ही विशाल हैं, यह लेन देन की एक प्रक्रिया है, एक कला दूसरी कला से प्रभावित है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के अध्याय 13 के अंतर्गत नाटक में रोचकता व सौंदर्य लाने के उद्देश्य से नाट्यधर्मी रूढ़ियों का वर्णन किया है, इस प्रकार शैलीबद्धता और नाट्यधर्मिता ऐतिहासिक एवं पौराणिक कहानियों में चमत्कारिक दृश्यों को पैदा करने में सहायक भूमिका निभाते हैं, नाट्यधर्मी का क्षेत्र अति व्यापक है, यह लोकधर्मी के यथार्थ से आगे जाने का मार्ग है, जैसे- एक पात्र का अनेक पात्रों में समाहित होने व बाहर निकलने की प्रक्रिया, पात्रों के अंग संचालन में रोचकता व लयात्मकता, सांसारिक गतिविधियों का प्रतीकात्मक दृश्यांकन आदि अनेक संभावनाओं का द्वार खोलती है।

जब भी हम नृत्य या अन्य शास्त्रीय कला रूपों को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि इन कलाओं में प्रयोग होने वाली मुद्रायें, गति, भाव-भंगिमायें सभी कुछ हमारे रोज के जीवन का विस्तार लिए हुए है, इन्हें एक विशेष उद्देश्य के लिये सौंदर्यपूर्ण व प्रस्तुतिपरक रूप से व्यवस्थित किया गया है, नृत्य में शरीर का कोई भी भाग सीधे-सीधे गति नहीं करता है, यह तिरछा और विपरीत दिशा की ओर गति करता है, "संस्कृत नाटकों की प्रस्तुति करते समय, उक्त परंपरा के जीवंत तत्व का समयानुकूल एवं उचित प्रयोग करना चाहिए, परंपरा को उसी रूप में न लेते हुए

उसके बेमेल अंशों का एकदम तिरस्कार करना और उसमें से सार तत्व का स्वीकार करना ही सृजनात्मकता का सबसे बड़ा लक्षण है, यहाँ निषेध का अर्थ है परंपरा के आंतरिक स्वरूप को उसकी समग्रता देखना।"

इस प्रकार समान शैलीबद्ध अभिनय भी इसी सिद्धांत का अनुसरण करता है। कहानी के रंगमंच में भी हम पाते हैं कि निर्देशक बिना शब्दों व कहानी के आशय में फेर-बदल किए, मंच पर शैलीबद्ध दृश्यों को रचते हैं, यहाँ कहानी को बोलना, संवाद व भाव सभी कुछ कहानी के अनुरूप होते हुए गति और दृश्य में भिन्नता लिए हुए होते हैं। कहानी के रंगमंच में अभिनेता, सूत्रधार और पात्र सभी का वास्तविक और काल्पनिक रूप एक ही मंच पर एक ही समय पर हो सकता है, यहाँ अभिनेता, पात्र और सूत्रधार सभी मंच पर अपनी उपस्थिति, एक साथ दर्ज कराते हैं, वास्तविक वातावरण जो कि शब्दों के साथ-साथ बनते-बिगड़ते रहते हैं, अनायास ही शैलबद्धता का रूप धारण करते जाते हैं।

आज के व्यक्ति का साथी व्यक्ति न होकर मशीन है, आज का व्यक्ति मशीन आश्रित है, ऐसे में वह भावना शून्य हो जाता है। इसके विपरीत आज का रंगमंच इसी स्थिति से जुझते हुए अभिनेता केन्द्रित व अभिनेता प्रधान हो गया हैं यहाँ अभिनेता अपने पूर्व अनुभव के साथ मंच पर एक स्वतंत्र स्थिति का बोध कराता है, सबसे ध्यान देने योग्य बात यह है कि शैलीबद्धता रंगमंच को किसी सीमा रेखा से नहीं बांधती। शैलीबद्ध शब्द आते ही विषम ग्लोबल हो जाता है। यहाँ अभिनेता किसी भी तरह के चरित्र या मंच सामग्री से बंधा नहीं होता, इसलिए यहाँ आहार्य नगण्य हो जाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि अभिनेता को अपने चरित्र का चित्रण करने के लिए किसी आभूषण या उस चरित्र की पहचान का वस्त्र पहनने की आवश्यकता नहीं हैं, यहाँ अभिनेता का अभिनय महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जबकि नाट्यशास्त्र के 19वें अध्याय में भरत ने आहार्य का विस्तृत वर्णन करते हुए अभिनेता के लिये आहार्य को महत्त्वपूर्ण माना है, जिसके द्वारा अभिनेता अपनी व्यक्तिगत पहचान छुपाकर एक दूसरे चरित्र में आने के लिए रंगों, कपड़ों, गहनों व मुखौटों का सहारा लेता है जबकि शैलीबद्ध नाटकों में ऐसा नहीं है। अभिनेता अपने वास्तविक रूप व वेशभूषा के साथ मंच पर आंगिक व वाचिक अभिनय द्वारा गतिशील रहते हुए घटनाओं का दृश्य निर्माण कर सकता है, यहाँ अभिनेता मंच के एक कोने में खड़े होकर कहानी कहते हुए सूत्रधार भी हो सकता है, और एक व्यक्ति विशेष भी। वह घटना का वर्णन इस प्रकार करता है, जैसे कि वह घटना उसकी आँखों के सामने घटित हो चुकी है, वह कहानी का वर्णन इस प्रकार करता है, जैसे कि वह अपना अनुभव दर्शकों से बांट रहा हो।

Scanned by CamScanner

अभिनय की इस पद्धति में व्यक्ति का अस्तित्व बना रहता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति, अभिनेता और पात्र तीनों मंच पर स्वतंत्र विचरण करते हुए अपनी-अपनी भूमिका अदा करते हैं। यहाँ निर्देशक के लिए सबसे चुनौती पूर्ण होता है, कहानी की आंतरिक बुनावट से उभरे दृश्य रूपों को उभारना। यहाँ नाटक की तरह स्पष्ट दृश्य योजना या फिर संवादों की नाटकीयता नहीं होती है, यहाँ निर्देशक को उन दृश्यों की कल्पना करनी पड़ती है, जो पात्र के मन में चल रही होती है।

जब भी कोई शैलीबद्ध दृश्य आँखों के आगे आता है तो अचानक से हम भ्रमित हो जाते हैं और अपने दिमाग के घोड़े दौड़ाने लगते हैं, अपना खुद का अर्थ तैयार करते हैं और हम खुद को उस कहानी के साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं। यहाँ अभिनेता की गति और कहानी दोनों में मिलान नहीं भी हो सकता है, तब कहानी को उसके लिखे हुए रूप में ही अभिनेता बोल रहा हो तब कहानी यथार्थ में और कल्पना दोनों में चलती है। जबकि अभिनेता की गति लयात्मक और संकेतात्मक भी हो सकती है। जैसे अभिनेता कहानी कहते-कहते एक स्टूल पर चढ़ा, अभिनेता का स्टूल पर चढ़ना वास्तव में स्टूल पर चढ़ना न होकर वह पात्र के प्रगति का या छत पर चढ़ने का सूचक हो सकता है। जैसा कि यथार्थवादी नाटकों में होता है, अनेकार्थ का द्वार खुल जाता है। यहाँ शास्त्रीय और यथार्थवादी रूप दिखता है, और दोनों मिलकर शैलीबद्धता की रचना करते हैं।

साहित्य और शैलीबद्धता दोनों अपने में ही विरोधाभासी शब्द हैं, और देवेन्द्र राज अंकुर ने इन दोनों का ही प्रयोग कहानी के मंचन में करके एक अनोखा तरीका इजाद किया। इस प्रयोग में नाट्यशास्त्र का नाट्यधर्मी रूप भी है। साथ ही अभिनय के सभी प्रकार आंगिक वाचिक, आहार्य तथा सात्विक की भी अहम भूमिका है। इसके साथ ही जनांतिक, अपवारित व आकाशभाषित जो कि सिर्फ संस्कृत नाटकों में ही प्रयोग होते थे, अंकुरजी अपने कहानी के मंचन में बड़ी ही कुशलता से प्रयोग करते हैं। जैसा कि रमेश चंद्र शाह की तीन कहानियों के मंचन जिनमें कहानी आज की तरीख में, पक्ष तथा अभिभावक के अभ्यास से प्रस्तुति तक की प्रक्रिया के दौरान के अनुभव में पाया कि मंच पर अभिनेता, सूत्रधार व पात्र का एक-दूसरे में समाहित होने और निकलने की प्रक्रिया चलती रहती है। कहानी कहना और संवादों के साथ उसे क्रिया रूप में लाना, आँखों के द्वारा व भाव-भंगिमाओं के द्वारा दृश्यों का निर्माण, वस्तुओं के प्रयोग का माइम करना, अभिनय का यथार्थ के करीब पहुंचकर उस यथार्थ का टूटन, यह बनने और टूटने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। कहानी 'पक्ष' में कहानी की लाइन इस प्रकार है—"छोटा था तभी से सोचा करता था माँ को अपने पास ही रखूंगा हमेशा, वैसा भी नहीं हो पाया, वो सपना पूरा होने की नौबत ही नहीं

आई, अब तो असंभव ही है, अब तो माँ भी बहुत बूढ़ी हो गई, आँखों में जाने क्या हो गया है दिखाई भी नहीं देता, आपरेशन के बाद भी हालत जरा भी नहीं सुधरी, किसी दिन माँ भी...।"

अभिनय करते समय कहानी की प्रकृति वही होती है। लेकिन अभिनय की कहानी से भिन्न, जैसे अभिनय में यतीन और मनोरमा दोनों द्वारा संवाद की तरह बोलना, यकायक यतीन और मनोरमा का आलाप लेते हुए कहानी का बोलना, गति का भी लयात्मक हो जाना, जो कि दृश्य का यथार्थ को तोड़कर शैलीबद्ध हो जाना। यहाँ सूत्रधार, अभिनेता, पात्र तथा व्यक्ति सभी एक ही समय पर एक ही मंच पर उपस्थित रहते हुए अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं, कब सूत्रधार पात्र बन जाता है, जो घटना घटित हो चुकी है, उसका वर्णन और उस घटना का दृश्यांकन (जो की अतीत में घट रही थी)। जबकि संस्कृत नाटकों में दो तरह के पात्र होते हैं, एक तो वो अभिनेता जो शारीरिक भाषा द्वारा दृश्य रचना करते थे जिन्हें शोभनिका कहा जाता था तथा दूसरे वे जो कहानी का वर्णन करते थे जिन्हें ग्रंथिका कहा जाता था, बाद में वह कथिका के रूप में सामने आई। बाद में इसी प्रक्रिया ने रंगमंच का रूप लिया होगा, जहाँ कथा वाचक के वाचन के अनुरूप अभिनेता शारीरिक क्रिया करके दृश्य का निर्माण करता रहा होगा। यहाँ अभिनय का रूप नाट्यधर्मी ही रहा होगा, इसी प्रकार कहानी के रंगमंच में भी अभिनेता घटनाओं का मर्म समझ कर उस काल का आनंद लेता है और शारीरिक एवं शब्दिक दोनों स्तर से दृश्च का निर्माण करता है।

प्रसिद्ध रंग निर्देशक कावालम नारायण पनिक्कर कहते हैं कि—"लोकधर्मी स्तर पर हम सिर्फ वस्तु की अवस्था का सृजन कर सकते हैं, जबकि नाट्यधर्मी में अभिनेता वस्तु के सत्व में डूबता है, उसका आनंद लेता है, और अपने शारीरिक भंगिमाओं से वस्तु के आंतरिक लक्षणों को व्यक्त कर दर्शकों के सामने उस अदृश्य वस्तु को साकार करता है।"

महेश चम्पकलाल शाह ने भी नाट्यम के लेख 'निर्देशक का रंगमंच' में कहा है कि—"यथार्थवादी शैली में खेले जाने वाला नाटक अभिनेता की कल्पना को संकुचित कर देता है।" शैलीबद्ध अभिनय द्वारा अभिनेता मनोवैज्ञानिक यथार्थ तथा चरित्र-चित्रण की तफसीलों में न जाकर अपनी भाव, मुद्राओं और देह का उचित इस्तेमाल आदि उपकरणों के जरिये मंच पर नये बिंब रचता है। इस नये शिल्प की खोज भारत और विदेशों में यथार्थवादी और प्रकृतवादी प्रवृत्तियों के खिलाफ प्रतिक्रिया से जन्मी है। जो 1850 के करीब विश्व रंगमंच में छाने लगी।

कहानी के रंगमंच में अभिनेता शब्दों का शैलीबद्ध संसार रचता है। तात्पर्य वस्तु व घटनाओं की हूबहू उपस्थिति न होकर उनके होने का आभास शब्दों व

Scanned by CamScanner